



प्रकाशित 21 मई 2018 को दैनिक जागरण में प्रकाशित -

अंकगणित मात्र नहीं है जनतंत्र

हृदयनारायण दीक्षित

लोकतंत्र भारतीय प्रकृति है। भारत के लोगों की जीवन शैली। संविधान निर्माताओं ने ब्रिटिश संसदीय शासन पद्धति का अनुसरण किया। संसदीय पद्धति में बेशक अंकगणित की महत्ता है, लेकिन वास्तविक जनतंत्र अंकगणित नहीं बीजगणित से फलीभूत होता है। अटल बिहारी वाजपेयी ने ठीक कहा था कि लोकतंत्र 51 बनाम 49 का खेल नहीं है। जनभावना का सम्मान और खेल के नियम जरूरी हैं।

संविधान सभा ने इसके लिए अनेक संस्थाएं गढ़ीं। सभा ने नवंबर 1949 में संविधान का काम पूरा किया। तात्कालिक चुनौतियों और समस्याओं के समाधान संविधान का भाग बने। 70 साल हो गए। अनेक नई चुनौतियां आईं। संविधान में 100 से ज्यादा संशोधन हो गए। बावजूद इसके चुनाव बाद सरकार गठन के मामले में बहुधा शोर शराबा होता है। लोकतंत्र की हत्या के आरोप प्रत्यारोप लगते हैं। आरोप लगाने वाले नहीं जानते कि भारतीय लोकतंत्र अजर अमर है, उसकी हत्या नहीं की जा सकती। कर्नाटक में चुनाव से लेकर येदुरप्पा के शपथ लेने और त्याग पत्र देने तक की सारी घटनाओं ने भारत का मन आहत किया है। इसलिए अब नई चुनौतियों के बरक्स सभी विषयों पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। कर्नाटक में कांग्रेस की सरकार थी। सरकार ने अपने कार्यकाल में नीति और कार्यक्रम के अनुसार जनता की सेवा की, लेकिन कर्नाटक की जनता को उसका कामकाज गलत लगा।

भाजपा सबसे बड़ा दल बनी। जनादेश कांग्रेस के विरुद्ध है ही। बेशक अंकगणित का बहुमत किसी को नहीं मिला। कायदे से कांग्रेस को जनादेश और जनअभिलाषा का सम्मान करना चाहिए था, लेकिन उसने चुनाव नतीजों के फौरन बाद अपने कट्टर विरोधी सबसे छोटे दल को सरकार बनाने के समर्थन की घोषणा की। कांग्रेस का आचरण जनमत के अपमान के साथ लोकतंत्र की भी पिटाई क्यों नहीं है? सरकारिया आयोग और सर्वोच्च न्यायपीठ ने चुनाव बाद के गठबंधन को सबसे बड़े दल के बाद रखा है। राज्यपाल ने इसी अनुसरण में सबसे बड़े दल को बुलाया।

तब राज्यपाल भाजपा के एजेंट क्यों और कैसे हो गए ? सवाल और भी हैं। स्पष्ट बहुमत न रखने वाले सबसे बड़े दल द्वारा बहुमत जुटाने का प्रयास बेईमानी क्यों है? सबसे बड़े दल के ऐसे प्रयास खरीद फरोख्त ही क्यों हैं ? कर्नाटक में सब कुछ उल्टा-पुल्टा हो गया। सबसे छोटा दल सत्ता में , उससे बड़ा दल समर्थक है और सबसे बड़ा दल लोकतंत्र विरोधी कहा जा रहा है।

कर्नाटक चुनाव का त्रिशंकु जनादेश भी अस्पष्ट नहीं है। यह जनादेश कांग्रेस के खिलाफ है। यह तथ्य सुस्पष्ट है। यह जनादेश भाजपा के पक्ष में है और स्पष्ट बहुमत के करीब है, लेकिन अंकगणित में थोड़ा पीछे है। संविधानविद् और देश के वरिष्ठ नेतागण हम विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करें कि इस जनादेश में सबसे छोटी पार्टी जनता दल (एस) की सरकार बनाने का निर्देश कहां और क्यों है ? सबसे छोटे दल की सरकार बनाने के लिए ही देश की सर्वोच्च न्यायपीठ का दरवाजा देर रात क्यों खटखटाया गया। न्यायालय ने रात 2 बजे सुनवाई की। राज्यपाल के अधिकार को चुनौती दी गई। कर्नाटक ने तमाम प्रश्न उठाए हैं। पहला त्रिशंकु विधानसभा की स्थिति में सबसे बड़े दल को सरकार गठन के लिए निमंत्रण देने का है। क्या निमंत्रण पाने और शपथ लेने के बाद उसे विश्वासमत पाने के लिए विधायकों से संवाद नहीं करना चाहिए ? कर्नाटक प्रकरण में ऐसे संवाद को खरीद फरोख्त और लोकतंत्र की हत्या कहा गया है। संविधान में मुख्यमंत्री की नियुक्ति के संबंध में संक्षिप्त शब्दावली है। कहा गया है कि मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करेंगे। वर्तमान राजनीतिक वातावरण के कारण इसमें स्पष्टता का अभाव है।

राज्यपाल गरिमामय संस्था है। कर्नाटक के राज्यपाल ने विधिमान्य कर्तव्य ही निभाया। तो भी मुख्यमंत्री की नियुक्ति वाली संवैधानिक शब्दावली का निर्वचन जरूरी है। याद कीजिए पहले आम चुनाव (1952) में मद्रास प्रेसिडेंसी (आंध्र , तमिलनाडु व मालाबार) में कांग्रेस हार गई। राज्यपाल ने अल्पमत वाले राजगोपालाचार्य को शपथ दिलाई। हरियाणा के राज्यपाल ने 1982 में बहुमत दल के नेता देवीलाल के बजाय भजनलाल को शपथ दिलाई। अयोध्या घटना के दिन (6 दिसंबर 1992) बहुमत प्राप्त मुख्यमंत्री कल्याण सिंह ने त्याग पत्र दिया , लेकिन राज्यपाल ने सरकार बर्खास्त की। अयोध्या के बहाने राज्यपालों द्वारा कई अन्य भाजपा सरकारें भी वध की गईं। 1997 में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल ने मुख्यमंत्री

कल्याण सिंह को हटाया , जगदंबिका पाल को शपथ दिलाई। वह न्यायालय के निर्देश पर हुए विशेष सत्र में फिर से जीते। ऐसे अप्रिय प्रसंग ढेर सारे हैं। राज्यपालों की गरिमा बचाने व संवैधानिक कृत्यों के निर्वहन के लिए पुनर्विचार जरूरी है। संविधान निर्माता ऐसी चुनौतियों का पूर्वानुमान नहीं लगा सके थे। मुख्यमंत्री की नियुक्ति और विश्वासमत की प्रक्रिया का सुस्पष्ट प्रावधान समय की मांग है। संविधान निर्वचन के प्रश्नों पर सभी दलों को एक राय होना चाहिए। 'संविधान बचाओ' की राजनीति का कोई मतलब नहीं।

भारतीय संसदीय जनतंत्र आदर्श परंपराओं के विकास में प्रायः असफल रहा है। स्वाधीनता के बाद आदर्श संसदीय परंपरा के विकास का अवसर आए। स्वाधीनता आंदोलन में तमाम राजनीतिक दल और गैर-राजनीतिक समूह थे। फिर कांग्रेस के पास दीर्घकाल तक सत्ता रही। भारत में ब्रिटिश संसदीय मॉडल की नकल हुई , लेकिन इसके आदर्श आधारभूत तत्व नहीं अपनाए गए। बीसवीं सदी में यूनाइटेड किंगडम में 20 सरकारें बनीं। कुल 10 सरकारें ही बहुमत की थीं। पांच गठबंधन सरकारें चलीं और पांच अल्पमत की भी। उनके गठबंधन नीति और मुद्दा आधारित थे। ब्रिटिश परंपरा का सुंदर वाक्य है , 'एग्रीमेंट टु डिसएग्री ' अर्थात् असहमत बने रहने की सहमति। अल्पमत की सरकारों को विपक्ष ने विधायन आदि मसलों पर गुणदोष के आधार पर समर्थन दिए , लेकिन विश्वासमत बनाए रखा। क्या भारत इससे कुछ सीख सकता है? कनाडा में 1921 से लेकर 2005 तक तमाम अल्पमत सरकारें चलीं और स्वीडन में भी। उन देशों के दल राष्ट्रहित को सर्वोपरि मानते हैं। विपक्षी सरकारों को गिराना ही कर्तव्य नहीं मानते। वे जनादेश का सम्मान करते हैं। कानून या बजट पारण आदि विषयों पर असहमत रहते हैं , संशोधन देते हैं, लेकिन सरकार चलने देते हैं।

भारत के किसी दल की आलोचना या प्रशंसा मूल विषय नहीं है। असली बात है जनादेश जनभावना और देशहित। मूलभूत प्रश्न यही है कि भारत के दलतंत्र में शत्रुता जैसा भाव क्यों है ? राजनीति के प्रति जनविश्वास का घटते जाना राष्ट्रीय चिंता का विषय क्यों नहीं है? गठबंधनों का भी कोई संवैधानिक आधार और नियम क्यों नहीं है ? चुनाव बाद के गठबंधनों की नैतिकता और स्थायित्व की प्रतिभूति क्या है? एक व्यक्ति का दल बदल दंडनीय है , दो तिहाई का सम्माननीय क्यों हैं ?

सत्तागठन में दूसरे दल के साथ फौरन पाला बदल लेना उचित क्यों है? उसी दल के किसी एक या दो विधायकों का पाला बदल अनुचित क्यों है? कर्नाटक के नाटक से उठे प्रश्नों पर पुनर्विचार अति आवश्यक है इसलिए और भी कि ये प्रश्न नए नहीं पुराने भी हैं। राजनीतिक खेल के सुस्पष्ट नियम बनाना बहुत जरूरी है।